ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 251-255
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

समकालीन कला में कला–रसास्वादन एवं कला समीक्षा का अभाव

डॉ0 अमृत लाल
एएसोसिएट प्रोफेसर– ललित कला विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ0प्र0), भारत

Received- 10.11.2018, Revised- 16.11.2018, Accepted - 19.11.2018 E-mail: aaryvart2013@gmail.com

सारांश : ***"हमारे देश में चरम स्थिति आनन्द और विशुद्ध चैतन्य का प्रबोध जगाने वाली चित्र–मूर्तिया भी मिलती है जो दर्शक को समाधि–स्थिति में ले जाकर उसके आनन्दमय स्वरूप का साक्षात कराती हैं। शिव की अनेक प्रतिमाओं में यह सम्भव होता है। शैव–मतों ` सवातंत्र को ही आनन्द (आनन्द स्वातंत्रय) परिभाषित किया है। शिव इसी आनंद के प्रतीक है। परम शिव को मर्यादाएँ भी नहीं बाँधती न मन की द्वन्द, जीवन के काम न, बोध की सीमाएँ। शिव की कला–कृतियों में जहाँ, तहाँ, दर्शक अपने ही अदर रसानुभूति, आनन्दमय स्वरूप को झलक पा लेता है। कला रसास्वादन की प्रक्रिया कला में तन्मय हो जाने की प्रक्रिया है। जिसके एक छोर पर होता है सह्रदय प्रेक्षक तो दुसरे छोर पर है कलाकृति की कलात्मक शक्ति एवं अभिव्यक्ति।"***

कुंजीभूत शब्द– आनन्द, चैतन्य का प्रबोध, चित्र–मूर्तिया, दर्शक, समाधि–स्थिति, आनन्दमय स्वरूप।

समकालीन कला में कला–रसास्वादन एवं कला समीक्षा का अभावः– कला में उसके सार–सर्वस्व को हम कैसे ग्रहण करते है। उस समय हमारे मनोदैहिक संस्थान में, भीतर और बाहर, क्या घटता है? इत्यादि प्रश्न यहाँ उठाये जायेंगे।

स्पष्ट है, हमारी इन्द्रियाँ कला में गोचर और अगोचर उसके सारर सौन्दर्य, रूप, को ऐन्द्रिक क्रियाओं द्वारा ग्रहण करती है। आँरने नहीं तो चित्र, वास्तु–स्थापत्य, मूर्मि आदि व्यर्थ है। सुने बिना संगीत निरर्थक है। नृत्य–नाट्य को . श्य–भ्रम दोनों माना जाता है। कविता का आन्नद, स्यात् अन्ध ा–वहरा ले सकता है परन्तु वह भी पूरा आस्वादन नहीं कर पाता।

"जानना और हो जाना–यही वेदान्त के प्रत्यक्षा का सार है, मा दर्शक, श्रोता/पाठक तन्मय नहीं होता तो कुछ नहीं होता।"

शंकुक का चित्र–तुरग मास चाक्षुष अनुभव नही है। घोड़े की कलात्मक .ति में उसका जब–वेग–बल–ओज–तेज उगाह–उत्साह, वीरों की उमंग–तरंग उतारी जाती है। वह मात्र .ष्टि का पेय' नहीं रहता, बल्कि प्राणो का उन्मेष होता है। अनेक ऐसी .तियाँ है जिनमें आत्मा के प्राणमय रूप की अभिव्यक्ति होती है। अनुमान दुर्गा–चडिका प्रलयंकर रुद्ध आदि मूर्तियों में यही होता है। सूर्य का रथ और उसके चक्र मानो रक्त में वेग पैदा करते है। प्राणों को उद्गार और उन्मेष एक कलात्मक विद्या है।

ऐसी भी कला–.तियाँ है जो अन्नमय कोश से भीतर नहीं जाती, और अपनी सुषमा, रंग आकार भगिमा, आदि चाक्षुष तत्वों में ही दर्शक को मुग्ध और आस्वदित (लीन) कर लेती है। इसमें भीतरी आयाम उथला होता है। ताज महल की महान कृति एक सुलभ उदाहरण है। मनोभाव कोश की गहराई तक जाने वाली कलाओ में भावों का विकट स्पन्दन होता है, जैसे, मातृत्व–वात्सल्य आदि भाव महा–मूर्तियों में, अथवा सुन्दरियों, यक्षिकाओं की कटीली भूभंग वाली .तियों में।

ज्ञानमय कोश तक ले जाने वाली अनेक .तियाँ की है, जैसे निर्वाण, शान्ति मोक्ष आदि विचारणाओं को समझाने और प्रस्तुत करने वाली जैन और बोद्ध प्रतिमाएँ। इनमें हस्त मुदाओं से स्पष्ट संकेत दर्शक को मिलते है।

हमारे देश में चरम स्थिति–आनन्द और विशुद्ध चौतन्य का प्रबोध जगाने वाली मूर्तियाँ भी मिलती है जो दर्शक को समाधि–स्थिति में ले जाकर उसके आनन्दमय स्वरूप का साक्षात् कराती है। शिव की अनेक प्रतिनाओं में यह सम्भव होता है। शैव–मतों ने सवातंत्र को ही आनन्द (आनन्द स्वातंत्रय) परिभाषित किया है। शिव इसी आनन्द के प्रतीक है। परम शिव को मर्यादाएँ भी नहीं बाँधती न मन के द्धन्द्ध, न जीवन के काम न बोध की सीमाएँ। शिव की कला–.तियों में, जहाँ, तहाँ, दर्शक अपने ही आनन्दमय स्वरूप को झलक पा लेता है।

कला–रसानुभूति की प्रक्रिया कला में तन्मय हो जाने की प्रक्रिया है। जिसके एक छोर पर होता है सह्रदय प्रेक्षक तो दूसरे छोर पर है .ति की कलात्मक शक्ति।

चित्रकला और मूर्तिकला जैसी प्रेक्ष्य (बिजुअल) विधाओं को हम देखने के साथ ही समझना और विश्लेषित करना भी क्यो चाहते है? क्या देखने का अनुभव अपने आप में पूर्ण नहीं हो सकता? दर असल, ऐसा कोई अनुभव पूर्ण (या अपने आप में काफी) तो ही सकता है लेकिन यूँगा कभी नहीं। किसी भी कलाकृति के सामने खड़े होने पर हमारे मन में कोई प्रतिक्रिया होगी ही, भले ही शब्दों में वह बहुत सक्षिप्त और

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

अच्छी' या 'बुरी' जैसे विशेषणों तक ही सीमित हो, और देखे तो यही वे सक्षिप्त प्रतिक्रियाएँ है जो हमें कला.ति को एक संभव जाँच करने के लिए उकसाती है।

ऐसी स्थिति में कला समीक्षा होनी चाहिए या नहीं, यह सवाल नहीं रह जाता। लेकिन यह सवाल जरूर रह जाता है कि वह किस रूप में हो और अपने लिए वह कौन–सी प्रासंगिकता तय करें। खास तौर पर ऐसी समीक्षा जो लिस्वी और पायी जाती है। तिस पर भी कला समीक्षा को लेकर– उसकी जरूरत या उसके होने को लेकर ही शंकाए बार–बार उठायी जाती है और कई बार तो बड़े भ्रामक ढंग से यह कह दिया जाता है कि कला समीक्षा कलाकर्म के बीच एक तरह की घुस पैठ है, यह कि कई कलाकार तो स्वयं अपनी .तियों की शाब्दिक व्याख्या या समीक्षा के खिलाफ रहे है और यह भी कि किसी कला.ति को देखकर होने वाले अनुभव को भाषा पूरी तरह से (या किसी भी तरह से) व्यक्त नहीं कर सकती है।

ऊपर से देखने पर ये शंकाएं ठीक लगती है, लेकिन अन्ततः इसके पीछे तर्क की वोट है और इस .ष्टि से देखे जो क्या किसी कविता (जो शब्दों से ही बनी है) को पढ़कर होने वाले अनुभव को भाषा में पूरी तरह रखा जा सकता है? यह जाँच लेने का कोई पैनामा आज तक नहीं बना कि किसी कविता को ठीक–ठाक उसी अर्थ में समझा दिया गया था, उसके बारे में उसी तरह बता दिया गया। यहीं कहा जा सकता है कि कोई समीक्षा किसी कविता के बारे में अच्छी तरह बता पाने में बहुत दूर तक सफल हुई।

इसी में उसके अच्छी होने, प्रस्वार होने की स्वी.ति छिपी है। दूसरे यह कि जब कोई कलाकार यह कहता है कि वह भाषा के खिलाफ है या अपने काम के संदर्भ में भाषा को अपर्याप्त मान रहा है तो यह वक्तव्य वह अपने लिये अपनी ओर से दे रहा होता है और किसी कलाकार को यह उचित ही बहुत तीव्रता के साथ महसूस हो सकता है। लेकिन उसके ऐसे किसी वक्तव्य के कारण उसकी कला की हम कोई जाच ही न करें, तो उसका भी कोई अर्थ नहीं है और क्या यह भी सही नहीं है कि कई लेखक, कलाकार अपनी रचना के बारे में जो वक्तव्य देते है, हम उनसे स्वतंत्र वक्तव्यों के प्रति कोई निरादर नहीं करते है और यह भी संभव है कि वे बहुत काम के हो बहुत सार्थक और प्रासंगिक – लेकिन एक पाठक, समीक्षक, दर्शक के लिए उन्हें 'अन्तिम' मान लेना तो रचना तक पहुँचने में एक प्रतिकिया के रूप में सहज स्वाभाविक लगती है, लेकिन उसका सहज स्वाभाविक होना काफी नहीं है, उसकी जरूरत और स्वास तौर पर आज हमारे यहाँ उसकी प्रासंगिकता के कारण भी जरूर बताते होंगे, यह मानना ठीक ही है।

एक समय था जब कलाओं और जिन्दगी के बीच की निरन्तरता में कोई फर्क नहीं थी, आदिम गुफा चित्रों से लेकर लोक कलाओं तक यह बात सही उतरती है, बहुत सी पारम्परिक कलाओं पर भी और मंदिरों से लेकर निवास स्थानों तक के वास्तुशिल्प पर भी मूर्तिशिल्प कलाएँ जिसका अभिभाज्य अंग भी। लेकिन धीरे–धीरे कला माध्यमों के काम करने के तरीकों में फर्क बढ़ा (जिसके कारण बहुतेरे है) औरकला के घटना स्थल सब समय हमारे सामने न रह कर .ष्टि के कुछ ओझल होने लगे। यह बताने की जरूरत पड़ने लगी कि कलाओं में ही कुछ महत्वूपर्ण घटितहो रहा है औरउसे जानना हमारे लिए लाभकारी होगा। इस सदी के प्रारम्भिक दशकों में फ्रांसीसी कलाकारों पिकासो और ब्रान्ट ने धनवाद (क्यूबिज्म) से जब चित्रकला में क्रांतिकारी परिवर्तन किये तो उसके साथ रहने वाले, उनसे निकट परिचय रखने वाले फ्रांसीसी कवि अलोपनेयर उनकी कला पर लिखने से अपने को रोक न सके। ऐसी ही घटना जर्मन कवि रिल्के के साथ घटी जिन्होने रोदाँ के शिला पर महत्वपूर्ण समीक्षाए लिस्बी। इससे भी पहले फ्रांसीसी कवि बाँदलेयर ने पेरिस (उन्नसवी सदी) में अपने समय में महत्वपूर्ण कलाकारों पर लिस्वनाजरूरी समझा। यह तथ्य हम यह इसलिए याद कर रहे है कि आधुनिक कला समीक्षा की बहुत से मामलों में शुरुआत इन कवियों ने की थी। यानी चित्रकला में व्यक्त मर्म को शब्दों में व्यक्त करना चाहा था। इसी में यह भी निहित है कि उनकी समीक्षाएँ एक विस्मय और खोज का भी परिणाम थी। यही कि उन्होंने कुछ देरवा लिया था और अपने इस अनुभव में वे दूसरों को भी देख लिया था और अपने इस अनुभव में वे दूसरों को भी भागीदार बनाना चाहते थे। यही याद कर ले कि ये पेशेवर' समीक्षाक नहीं थे। आधुनिक कला समीक्षा कला जगत की प्रचारात्मक और व्यवसायगत जरूरतों के कारण ही नहीं शुरू हुई।

आधुनिक कला–माध्यमो में तैलचित्र, रेखांकन, छापाचित्र और आधुनिक मूर्तीशिल्प प्रायः सभी अपने रचे जाने और प्रदर्शित होने तक एक प्रकार के एकान्त में रहते है और प्रदर्शित होने पर भी वे बहुतो तक नहीं पहुँचते। या तो वे स्वरीदकर घर में टाँग लिये जाते है या किसी प्रदर्शनी से उठकर किसी संग्रहालय में पहुँच जाते है। प्रदर्शनी या संग्रहालय में जब हम कला.ति देखने जाते है तब मानों हम अपने समय का एक हिस्सा निकाल कर उसे देखने पहुंचते है। और .तियों की एक स्मृति ही अपने साथ ला पाते है। जिनके पास इतने साधन है। कि .ति को घर में स्वरीदकर टाँग सके उनके यहाँ भी ये कही बाहर से लाकर रखी गई चीजे है। उनके बनने और रचे जाने दौरान उनका इन कृतियों के साथ उस तरह का रिश्ता नहीं रहा जैसा कि लोक कृतियों के साथ लोक जीवन कम रहता है। और यह भी कि वे

कलाकृतियाँ बहुत करके घर के वास्तुशिल्प का अविभाज्य हिस्सा नहीं होती, जब तक कि वे म्यूरल (भित्तीचित्र) के रूप में वास्तुशिल्प के साथ शुरू से ही पिरोयी न गयी हो। समीक्षा की जरूरत बहुत कुछ इन कारणों से सभी से भी हो जाती है। क्योकि वह कला.ति की मर्म पहुँचाने के साथ ही कई दूरियों को भी पाटती है। हाँ, इस स्थिति के कुछ ऐसे नतीजे भी निकले है। जो बहुत हितकर या अच्छे नहीं है। आधुनिक कला समीक्षा स्वास तौर पर पेशेवर कला समीक्षा पर (पश्चिमी समाजो में) एक यह आरोप भी है कि वह घर बैठे एक स्वास वर्ग की जरूरतों को ही पूरा करती है कला की दुनिया के बारे में चटपटी जानकारी देकर कला की तथा कपित गुत्थियों को सुलझा कर उस वर्ग को सुविधा देती है। कि वह अपने 'जानकार' और कला.ष्टि संपन्न होने का दावा कर सके और इस जानकारी पर दंभ और संतोष कर सके। दूसरा आरोप यह है कि वह बहुत निरंकुश, वे दंभी भी हो जाती है। और कला बाजार के साथ उसकी एक तरह की साँठ–गाँठ हो जाती है। वह कला की दुनिया में बहुत कुछ बनाने–बिगाड़ने की हैसियत अख्तियार कर लेती है। कुछ दिनों पहले अमेरिका में प्रकाशित टॉम वुल्फ की पुस्तक 'पेटेट वर्ड (चित्रित शब्द) में कई सुप्रसिद्ध अमेरिकी समीक्षकों पर यह आरोप भी लगाया गया है कि कला जगत पर वे जैसे शब्द के माध्यम से शासन करते रहे है। यह आरोप विवादस्पद और अतिरजित है। खास तौर पर पुस्तक में जिस चटपटी शैली में लगाया गया है लेकिन एक आशंका की ओर तो इंगित करता ही है।

इन आरोपों आशंकाओं के बावजूद यह मानने के कारण है कि कला–समीक्षा के क्षोत्र में वहाँ गम्भीर और महत्वपूर्ण काम भी हुआ है। और इन दोत्र में सब कुछ केवल धोखा नहीं है। तिस पर भी एक बात को यहाँ याद कर लेना अच्छा होगा कि हमारे यहाँ की कला जगत स्थिति बहुत भिन्न है। और कला समीक्षा के आदर्श भी दूसरे होने होंगे। हमारे यहाँ कला–जगत प्रदर्शनियाँ, संग्रहालयों, कला बाजार आदि के मामले में अभी किन्ही तार्किक सामाजिक परिणतिको तक नहीं पहुंचा। उसके रचनात्मक उत्स और प्रकार भी किसी हद तक 'स्थिर' और साफ नहीं हुए और उसकी रचनात्मक घटनाओं की गति भी वही नहीं है जो पश्चिमी कला–जगत की है। लेकिन यह भी कि वह अपनी निजी और अन्तर्राष्ट्रीय कला–जगत की आरोपित समस्याओं दोनों से ही जूझ रहा है। हमारे यहाँ चार अंतर्राष्ट्रीय त्रिवार्षिक प्रदर्शनियाँ हो चुकी है, विभिन्न देशों की प्रदर्शनियाँ की थोड़ी बहुत आती रहती है और स्वयं कलाकारों में से बहुतेरे विदेशो की यात्रा कर चुके है, और अंतर्राष्ट्रीय कला–जगत से भी एक परिचय रखते है। दूसरे शब्दों में, कला–जगत की गति बहुत तीव न होने के बावजूद उसमें कई तरह की रचनात्मक ही नहीं, समस्यागत धाराएँ भी एक साथ बह रही है और दिलचस्प या गौर करने लायक बात यह है कि ये सब धाराएँ कला–जगत के भीतर ही बह रही है। सामाजिक स्तर पर उनका निकास या बहाव बहुत कम है।

ऐसी स्थिति में हमारे यहाँ कला समीक्षा शायद बहुत दिनों तक 'खबर' के रूप में भी रहने वाली है या 'खबर' के पहलू को उसे बहुत दिनों तक अपने में समेटे रहना होगा। लेकिन कला समीक्षा केवल 'खबर' नहीं है। यह भी हमे सब समय ध्यान में रखना होगा और यह भी कि कला.ति केवल एक चाक्षुष अनुभव नहीं, वह अपने आप में एक विचार भी है। कोई थोपा हुआ विचार नहीं (आदर्श स्थिति यही होगी) बल्कि कला.ति में बसा हुआ विचार। समीक्षा देने ही काम करती है या कहे उसे ये दोनों ही काम करने चाहिए वह कला.ति के विचार (इस शब्द का इस्तेमाल हम सुविधा के लिए और लचीले अर्थ में कर रहे है, एक अर्थ में नहीं) को भरसक ढूँढ़ निकालती है। और जहाँ कल.ति में इस मामले में कोई शून्यता है, वहाँ जोर देकर इस बात का उल्लेख करती है और इस काम के लिए इसकी जाँच के लिए वह विभिन्न कलाओं के, सामाजिक स्थितियों के साक्ष्य लेती है, फिल्म, वास्तुशिल्प, साहित्य, नृत्य, नाटक इतिहास, कला इतिहास, सामाजिक और राजनैतिक घटनाओं और स्थितियों सबकी मदद। कला.ति चाहे जितने बड़े एकान्त में रची गयी हो– जैसे भी सामाजिक अलगाव के बीच वह हमारे बीच कुछ प्रदर्शित करने के लिए ही आती है चित्र–भाषा का कोई भर्म, कोई अन्त.'ष्टि कोई (कई) अनुभव और ऐसी कोई सच्चाई जो जिन्दगी जीने (और उसे अच्छी तरह समझने) के काम आती है। सुप्रसिद्ध अमरीकी कला समीक्षक हरल्ड रोजेनवर्ग ने एक जगह लिखा है कलाएँ अगर साँड युद्ध से श्रेष्ठ है तो इसलिए नहीं कि वे शैली के मामले में सम्पन्नता है– दर असल इसका उल्टा ही सही है। बल्कि इसलिए कि वे समाज की .ष्टि को प्रभावित कर सकने की (कहें उसमें कुछ जोड़ सकने की) क्षमता रखती है।

देखे तो अच्छी कला–समीक्षा, कला.ति पर शब्द का शासन नहीं लादती, वह कला.ति के भीतर जाकर उसके अनुभव को बाहर लाने की और उसे कई चीजों से जोड़ने की कोशिश करती है और इस तरह सोचने–देखने बहस करने के लिए खुराक इकट्ठा करती है। और जहाँ उसे कला.ति अनुत्तेजित' छोड़ देती है, वहाँ वह इसके कारण ढूँढती है। शंकाएँ उठाती है। यहीं यह भी याद कर लें कि कला समीक्षा कला.ति पर किया गया कोई उपकार नहीं है यह शब्द–भाषा की एक जरूरत भी है जो बराबर मानवीय अनुभवों को वे चाहे जिस क्षोत्र में, जिन कलाओं के हो– दर्ज करने की एक बाध्यता महसूस करती है। और दर असल कला समीक्षा की

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

जरूरत हमें स्वास तौर पर आज इस कमी को पूरा करने के लिये भी है– भारतीय भाषाओं में कला समीक्षा का आग्रह इस .ष्टि से भी होना चाहिए। (यह आकस्मिक नहीं है कि कला समीक्षा अपने कई सन्दर्भ साहित्य से लेती है और बदले में उसे भी कुछ देती है। अच्छी समीक्षा–चाहे वह किसी कला या विद्या की हो–भाषा को भी सम्पन्नतर बनाती है।

सवाल उठ सकता है कि क्या आज समकालीन या आधुनिक कला में ऐसी और इतनी .तिया है कि उनके अनुभव और विचार, शब्द–भाषा में अपनी चर्चा के लिए हमें अत्यधिक और लगातार 'उत्साहित करते हो? जाहिर है कि ऐसे सवाल में एक नकारात्मकता पहले से छिपी होगी। और यह सवाल विवादास्पद है या नहीं, इसकी बहस में पड़े बिना ही यहाँ यही कहा जाये कि अगर कोई ऐसा मानता भी है कि सचमुच ऐसी और इतनी .तियाँ नहीं है तो भी कला समीक्षा बेमतलब नहीं हो जाती, क्योकि उसके जिम्मे तब भी एक बड़ा काम बचाता है कि वह बढ़ती गतिविधियों (और .तियों) के बीच यह रेखांकित करने की कोशिश करे कि ऐसा किन कारणों से है यह कला पर फिर शब्द का शासन लादना नहीं होगा, बल्कि एक स्थिति को शब्द के माध्यम से समझना होगा और एक बहस को जन्म देना होगा। कला समीक्षा के अभाव को दूर करना आवश्यक होगा।

समाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ– राजनीति से कला के अलग रहने का सवाल ही निरर्थक है। आज तो कोई समाज का ऐसा क्षेत्र नहीं जो किसी न किसी रूप में राजनैतिक दबाव महसूस न करता हो चाहे गाँव हो या शहर, चाहे व्यापारी हो या कर्मचारी, मजदूर किसान नौकरी पेशा के लोग, वैज्ञानिक कलाकार साहित्यकार कौन ऐसा है जिस पर राजनीति का प्रभाव न हो? राजनीति तो आज स्कूल कालेजो विश्वविद्यालयों तक में पूरी तरह होती है। कौन बचा है इसके अच्छे या बुरे परिणामों से?

पाश्चात्य आधुनिक कला के क्षेत्र में कलाकार आत्म–अभिवयंजना में मुक्त होता चला गया। उसने धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक विषय–वसतु को अपनी कला से बहिष्त कर दिया और शैली तथा तकनीक को महत्व देना आरम्भ किया। इतना ही नहीं उसने पहले की सभी कलागत मान्यताओं सिद्धान्तो को भी त्याग दिया और अकला (।दजप तंज) के रास्ते पर चलकर कला को नितान्त अर्थहीन, अथवा असाधारण स्वरूप दे डाला। वह इतना मुक्त हो गया कि अब उसकी कला–विक्षिप्तावस्था को छू रही है। बाडी आर्ट' अर्थ आर्ट तथा हैपेनिंग आर्ट के नाम पर अमरीका में भद्दे से भद्दे हृदय विदारक अर्थहीन तमाशे प्रस्तुत किये जा रहे है। आध्ुनिक कला के नाम पर। वह स्वयं भी पूरी तरह भ्रमित हो चुके है और दूसरों को भी कर रहे है। और कहा यह जा रहा है। कि जनतात्रिक व्यवस्था में कलाकार ने अभिव्यंजना की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है। ऐसी स्वतंत्रता कि कला का समाज से उसकी वास्तविकता आशा आकांक्षाओं से, सांस्ति सामाजिक प्रगति से, शान्तिमय सुखमिय प्रगतिशील जीवन से कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया है।

व्यैक्तिक आत्म अभिव्यंजना पागलपन के प्रलाप का अनाप–शनाप उद्घोष बन गई है। इसी को कला की स्वतंत्रता घोषित किया जा रहा है। वास्तव में यह सब 'अकला'मात्र ही नहीं, असामाजिक असांस्कृति भी बन चुकी है। जो कला आन्दोलन महायुद्धों की विभीषिका, असामाजिकता के खिलाफ प्रज्वलित हुआ था वह खुद उसी का अंग बन गया है, उसी का परवरिश कर रहा है। इसे पाश्चात्य आधुनिक कला के आन्दोलन का पटाक्षेप ही मान लेना होगा– और स्वस्थ, मानव हितकारी, सामाजिक तथा सांस्ति कला के नये स्वरूपों को फिर से पल्लवित तथा पुष्पित करना होगा।

लेखक थडवर्ड लूसी स्मिथ ने आधुनिक कला की नवीनतम प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुये प्रकाशित पुस्तक "आर्ट नाऊ" के अतिम अध्याय में कहा है ''एक भविष्यवाणी में अवश्य करना चाहूँगा चाहे उसमें जितनी भी हिचकिचाहट क्यों न हो, वह यह कि उस समय तक आधुनिक कला की अवधारणा का स्थान किसी और ने लिया होगा। जिसका मूल स्वभाव क्या होगा। हम अभी समझ नहीं पा रहे है। निश्चित रूप से लूसी स्मिथ का यह मत है कि आधुनिक कला जिस रास्ते पर जा रही है। वह क्रान्तिकारी रूप में बदलेगा। वर्तमान आधुनिक कला व्यक्तिवाद की चरम पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी है। अब उसके सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं इसके सिवा कि वह आधुनिक समीक्षावादी समाजोन्मुख हो। समाजोन्मुखी कला का पहला काम होगा समाज में व्याप्त राजनीतिक अन्यथा तथा भ्रष्टाचार के खिलाफ समाज की जागरुक बनाना तथा आन्दोलित करना। परम्परागत असामाजिक तथा असांस्तिक कुरीतियों के प्रति घृणा उत्पन्न करना और उनके उन्मूलन के प्रति लोगों को प्रोत्साहित करना। हर प्रकार की सामाजिक आर्थिक विसंगतियों के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा देना।

इसके बिना न तो स्वस्थ, शान्त, प्रगतिशील जीवन प्राप्त हो सकता है। इस ध्येय को ध्यान में रखकर कला की शैली को स्पष्ट, तीव तथा प्रभावोत्पादक बनाना पड़ेगा। ताकि वह समाज के हर वर्ग को प्रभावित तथा प्रेरित कर सके। आधुनिक कला के नाम पर जो 'अकला' का खेल चल रहा है। उसे समाप्त करना होगा। कलाकार के लिये अभिव्यंजना की स्वतंत्रता आवश्यक है किन्तु उसे समाजोन्मुख रूप अपनाना ही होगा। जो यह देखा जा सकता है। कि आधुनिक कला समीक्षावादी चित्रों का विषय–वस्तु समकालीन सामाजिक

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

परिस्थितियाँ तथा समस्यायें है जो एक जन आन्दोलन के रूप में है।

समीक्षावादी कलाकार न तो समाज का यथावत् चित्रण करते है न ग्रामीण, मजदूर अथवा साधारण वर्ग के लोगों का चरित्र चित्रण करना ही अपना मुख्य उद्देश्य समझते है। वे मुख्यतया समाज विरोधी तत्वों, कुरीतियों, परिस्थितियों व्यक्तियों वर्गो की खुली, पैनी, स्पष्ट समीक्षा अपनी प्रतीकवादी तथा व्यंगात्मक शैली में करते है। यथावत या यथार्थ चित्रण करना एक बात है, प्रतीकात्मक, व्यंगात्मक समीक्षा करना दूसरी।

दोनों में स्पष्ट अन्तर है एक वस्तु–स्थिति का चित्रण करता है। दूसरा वस्तु–स्थिति की समीक्षा करता है। इन दोनों में दृष्टिकोण का अन्तर है, शैली में अन्तर है और उद्देश्य में भी अन्तर है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक कला 'समीक्षावाद' लेखक प्रो० रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ संख्या–८३–११३ से साभार।
2. समीक्षावाद' (एक कदम और आगे) से साभार–लेखक डॉ० गोपाल मधुकर चतुर्वेदी।
3. रूपनारायण बाथम तूलिकांकन' वर्ष ३, अंक ५, नवम्बर–८० से साभार।
4. धर्मवीर भारती 'धर्मयुग' बम्बई से साभार।
5. रूपनारायण बाथम 'तूलिकांकन' वर्ष–3, अंक ७, नवम्बर ८० से साभार।

*****